निर्वाण मार्ग

श्री तटवर्ती वीर राघवराव

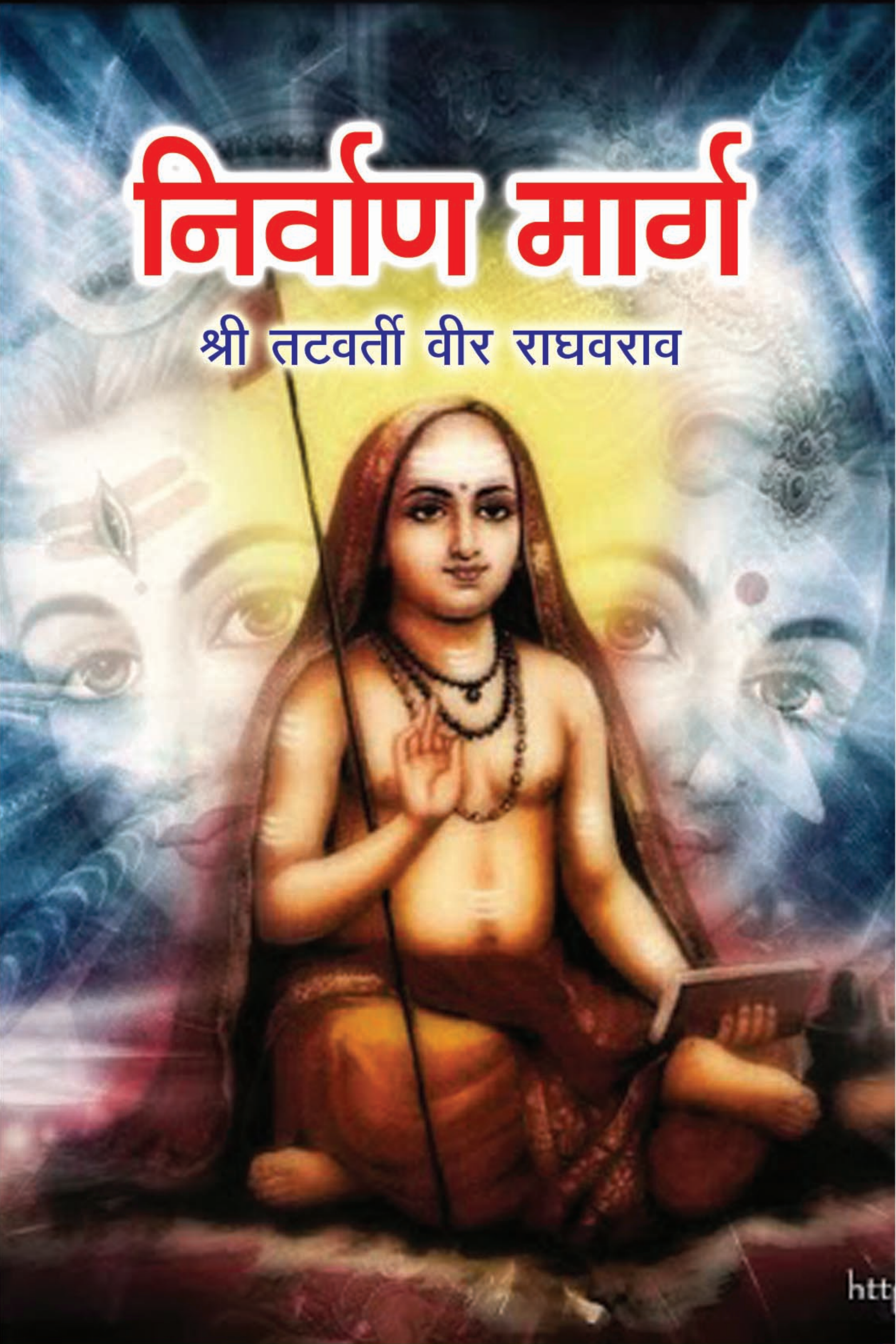

निर्वाण मार्ग

लेखक : श्री तटवर्ती वीर राघवराव

हिन्दी अनुवादः श्रीमति तम्मन श्रीलता

For Books Please Contact :

TATAVARTHY VEERA RAGHAVARAO

Tatavarthivari Street, BHIMAVARAM-534201.

W.G.Dist., A.P. Ph: 94403 09812

Rs.60/-

सूची

1. निर्वाण मार्ग 3
साधना चतुष्टय 4
'एक घंटे के लिए... दम' 11
यम - नियम 14
2. मुमुक्षु के शत्रु 19
3. निर्वाण षट्कम 32
4. 'ध्यान करिए' 36

For Books Please Contact :
TATAVARTHY VEERA RAGHAVARAO
Tatavarthivari Street, BHIMAVARAM-534201.
W.G.Dist., A.P. Ph: 94403 09812

निर्वाण मार्ग

मनुष्यों को दुःखों अर्थात समस्याओं, कठिनाइयों, कष्टों और बीमारियों से बाहर आने के लिए तरह-तरह के प्रयास कर रहे हैं। उस तरह मानव सारा जीवन प्रयत्न कर रहे हैं। लेकिन दुःखों से बाहर नहीं निकल पा रहे हैं। कारण यह है कि वे दुःखों से शाश्वत बाहर आने का प्रयत्न नहीं कर रहे हैं। दुःखों से शाश्वत बाहर निकल पाना ही मुक्ति कहलाती है।

उस तरह मुक्ति पाने का प्रयत्न करना मुक्ति मार्ग कहलाता है। मुक्ति के बारे में, मुक्ति को कैसे प्राप्त करना होगा ? यह जानना चाहिए।

मुक्ति को 'मोक्ष'और 'निर्वाण' भी कहते हैं। इसलिए जानना चाहिए कि मुक्ति, मोक्ष, निर्वाण सभी एक ही है। मुक्ति यानी शाश्वत दुःख राहित्य।

मानव को मुक्ति पाने की स्थिति को 'मुक्त स्थिति' कहते हैं। निर्वाण स्थिति कहते हैं। अर्थात मानव हमेशा आनंद से रहने की स्थिति, आनंद का अनुभव करने की स्थिति।

ये निर्वाण मरने के बाद आने वाला नहीं है, कोई वरदान देने वाला नहीं, कोई देने वाला नहीं है, कोई भी प्रसाद करने वाला नहीं, यह उनको अपने आप के प्रयत्न से, खुद की मेहनत से हासिल करना होगा। यदि आप यह जानते हैं, तो आप किसी की प्रार्थना नहीं करेंगे, याचना नहीं करेंगे। अपने आप ही प्रयत्न करेंगे, अंत में हासिल करेंगे।

उस तरह प्रयत्न करने वाले को मुमुक्ष कहते हैं। जो मुक्ति के लिए प्रयास करते हैं वे अपनी साधना की तीव्रता के आधार पर अपने जीवनकाल के दौरान 'मुक्त की स्थिति' प्राप्त करेंगे। जो जीवित रहते हुए ही 'मुक्ति' प्राप्त कर लेते हैं उन्हें 'जीवनमुक्त' भी कहा जाता है। अर्थात जो जीवित रहते हुए ही सभी परिस्थितियों में आनंद से रहने वाले।

मुख्य रूप से ऐसे लोगों के लिए यानी जो लोग मुक्ति चाहते हैं यानी जो मोक्ष की इच्छा रखने वाले यानी मुमुक्षु की स्थिति आसानी से प्राप्त करने के

लिए ब्रम्मर्षि पत्रीजी द्वारा सिखाए गए 'सांस पर ध्यान' का ध्यान करना चाहिए। 'मुक्त स्थिति' केवल ध्यान के अभ्यास से ही संभव है।इसके अलावा और कोई मार्ग नहीं है।

इसके साथ ज्ञानियों के पुस्तकें अर्थात आत्म ज्ञान से संबंधित पुस्तकों को पढ़ना चाहिए। इसके साथ सत्य के अध्यापन अर्थात आत्मज्ञान का अध्यापन करने वालों का संगति करना चाहिए।

इसलिए जिन को ऐसी इच्छा है वे निश्चित रूप से 'निर्वाण की स्थिति' प्राप्त कर सकते हैं यदि वे तीव्रता से, लगन से ध्यान का अभ्यास करें, सात्विक शाकाहार भोजन खाकर और थोड़े नियमों का पालन करें।

ऐसे तीव्र साधना करने वाले जानने और पालन करने के मुख्य विषयों को श्री आदि शंकराचार्य जी ने 'साधना चतुष्टय' के द्वारा बताया गया।

साधना चतुष्टय

साधना करने वालों को पालन करने के चार मुख्य विषय।

1. विवेक, 2. वैराग्य, 3.षट् संपत्ति, 4. मुमुक्षत्व

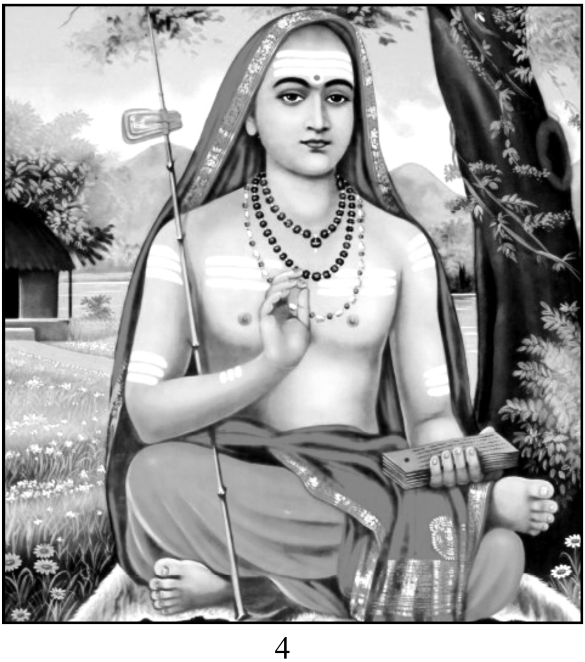

1.विवेकः

इसी को नित्यानित्य वस्तु विवेक कहते हैं।

इस सृष्टि में नित्य भी है, अनित्य भी है। नित्य अर्थात जो शाश्वत है अर्थात हमेशा रहने वाला। वैसे ही अनित्य अर्थात अशाश्वत अर्थात अस्थाई अर्थात जो हमेशा नहीं रहता ऐसा कह सकते हैं।

मुक्ति चाहने वाले ध्यानियों के लिए विशेष रूप से जागरूकता आवश्यक है। नित्य क्या है? अनित्य क्या है? अर्थात क्या अस्थायी है? इसे जरूर जानना चाहिए।क्योंकि अस्थायी हमेशा अस्थायी होता है। यानी थोड़े समय तक रहेगा। उससे आने वाले परिणाम भी अस्थायी ही रहेंगे। वैसे ही जो शाश्वत है उसके परिणाम भी शाश्वत रहेंगे।

स्वाभाविक रूप से हर कोई अपने से किए कृषि की स्थायी परिणाम की उम्मीद करता है। क्योंकि यदि इतनी मेहनत करके जो परिणाम हासिल किया वो थोड़े देर हो तो उसका क्या प्रयोजन? जो श्रम किया वो वृथा हो गया ना? इसलिए कोई भी काम करने का परिणाम शाश्वत रहने का इच्छा करते हैं। तब जो श्रम किया गया उसके अनुकूल परिणाम मिलेगा।

उदाहरण में हर कोई जीवन में आनंद को ही चाहता है। इसलिए आनंद को पाने के लिए बहुत मेहनत करते रहते हैं, बहुत कमाते हैं, बहुत सारा जमा करते हैं। उस तरह कमा कर उनके द्वारा आनंद पाना चाहते हैं। विशेष रूप से पहले पैसे कमाते हैं। उन पैसों से बहुत जमा करते हैं। जमीनें, मंजिलें, गाड़ियाँ, ए.सी., फर्नीचर, कपड़े, सोना, चीजें सब जमा करके उनसे आनंद पाना चाहते हैं। लेकिन अगर उन्हें जमा करते वक्त थोडा आनंद मिलता दिखता है लेकिन वो आनंद कुछ देर के लिए होती है लेकिन शाश्वत आनंद नहीं रहता। इसलिए कुछ लोग सोचते हैं कि अगर उन्हें अच्छी नौकरी मिल जाए तो आनंद से रह सकते हैं, कड़ी मेहनत से अच्छी नौकरी कमाएंगे। लेकिन तब भी उनका आनंद थोड़े देर तक ही रहता है। फिर किसी न किसी दुःख में गिर जाते हैं।

उसी तरह सोचते हैं कि विवाह करने पर आनंद पा सकते हैं। विवाह

करते हैं। लेकिन तब जो आनंद पाते हैं वो भी अस्थाई है। बाद में सोचते हैं कि बच्चे होंगे तो आनंद होगा, बच्चों को पैदा करते हैं। लेकिन तब भी उनका आनंद अस्थायी होगा। तरह-तरह कारणों के वजह से बच्चों के वजह से जो आनंद पाया है वह दूर हो जाता है।

कुछ लोग सोचते हैं कि पदों से आनंद मिलेगा। पदों को कमाते हैं। लेकिन पदों से जो आनंद मिला वो भी कुछ देर ही था। वैसे ही मानव आनंद को पाने के तरह-तरह के प्रयत्न कर रहे हैं। सारे जीवन में कितनो को कमाते हैं, जमा करते हैं। उस तरह पत्नी को, बच्चों को, पोतों को, रिश्तेदारों को, दोस्तों को, नजदीक वालों को अनेक लोगों को पाते हैं। लेकिन कितने लोगों को पाने पर भी, कितने होने पर भी पूरा आनंद नहीं पा सकते हैं। कितनों को पाने पर भी उनका आनंद अस्थाई ही है शाश्वत नहीं है।

इसका मुख्य कारण यह है कि मानव आनंद पाने की कोशिश कर रहा है वो सब अशाश्वत है! अस्थायी भी है! अर्थात कभी न कभी दूर हो जाएंगे, अदृश्य हो जाएंगे। इसलिए उस तरह के अस्थाई के साथ आने वाला आनंद शाश्वत कैसे रहेगा? अस्थाई से आने वाला आनंद अस्थाई ही रहेगा।

उदाहरण के लिए मान लीजिए आपने एक नई कार खरीदी। नई कार खरीदने से आनंद मिलता है। लेकिन नया कार हमेशा नया नहीं रहेगा ? जैसे-जैसे कार पुराना होता है, मरम्मतें आते हैं। ठीक से चलता भी नहीं। इससे बहुत परेशानियॉ होती है। पहले जिस कार ने आनंद दिया वो अभी दुःख दे रहा है। तो इस सृष्टि में किसी भी वस्तु को लेने की यही स्थिति है।

उसी तरह, मान लीजिए कि युवावस्था में खूबसूरत पत्नी को, या पति को शादी किया है। लेकिन समय बितते बीतते उनका युवावस्था पहले जैसे नहीं होता, खूबसूरती भी पहले जैसे नहीं होता ।वैसे ही जो आकर्षण युवावस्था में था वो अब नहीं होता। जो आनंद पहले था वो अब नहीं दिखता।

वैसे ही बच्चा गोद में जो आनंद देता है वो आनंद दाढ़ी बढ़ने के बाद देखने को नहीं मिलती है ।इसीलिए कहा जाता है, ‘एक बच्चा जब गोद में होता है तो बच्चा होता है, लेकिन जब उसकी दाढ़ी बढ़ जाती है तो वह बच्चा नहीं

होता'। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि इस सृष्टि में जो कुछ भी दिखाई देता है वो अस्थायी है लेकिन शाश्वत नहीं है।क्योंकि जब वो चले जाते हैं तो उससे मिलने वाला आनंद भी चला जाता है। इसलिए अस्थाई अस्थाई ही है, शाश्वत शाश्वत ही है।

इसलिए, जब मानव शाश्वत आनंद को पाना चाहता है तो उसे जो शाश्वत है उसी का आश्रय लेना होगा। जो शाश्वत है उसे पाने का प्रयत्न करना चाहिए। और शाश्वत को प्राप्त करने के लिए, प्रयत्न करने के लिए, आश्रय लेने के लिए पहले शाश्वत क्या है? अशाश्वत क्या है? पता होना चाहिए। इसलिए नित्य क्या है अनित्य क्या है इसके बारे में विवेक होना मुमुक्षु को जरूर आवश्यक है। क्योंकि अगर अंतर नहीं पता होगा तो अनित्य को नित्य मान लेंगे और उनके पीछे पड़ जाएंगे। अंत मे निराश हो जाते है। इसीलिए श्री आदि शंकराचार्य जी ने कहा कि यह विवेक पहले आवश्यक है। इसलिए जानना होगा कि नित्य क्या है? अनित्य क्या है?

यदि विचारण करें तो इस सृष्टि में एकमात्र 'ईश्वर' ही नित्य है, शाश्वत है। उस भगवान को ही आत्मा कहते हैं। इसलिए 'आत्मा' ही नित्य है।

इतना ही नहीं जानना चाहिए कि 'आत्मा' ही सत्य है। कारण यह है कि 'आत्म' ही शाश्वत है। इतना ही नहीं 'आत्म' आनंद स्वरूप है। वैसे नित्य शाश्वत, सत्य, आनंद स्वरूप आत्मा अर्थात भगवान का जो आश्रय लेता है, पाता है, वे शाश्वत आनंद को पा सकते हैं।

ऐसी आत्मा को जानने का मार्ग, आत्मा का आश्रय लेने का मार्ग, आत्मा को प्राप्त करने का मार्ग ब्र्ह्मर्षि पत्रीजी द्वारा सिखाई गई 'श्वास पर ध्यान' की साधना है।

परन्तु संसार में भगवान अर्थात 'आत्मा' का आश्रय न लेकर भगवान की सृष्टि अर्थात भगवान से जो सृष्टि की गई उस का आश्रय ले रहे हैं। उन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इनके जरिए आनंद प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं। लेकिन जो कुछ भी बनाया गया है वो सब अशाश्वत है, थोड़े समय

के बाद जो अदृश्य हो जाएगा इस विषय को जान नहीं पा रहे हैं, वे सोचते हैं कि भगवान की सृष्टि महान है, उसी में आनंद है, उस सृष्टि में जो कुछ है उस के पीछे पड के, उन्हें जमा करके, उनको देखकर मन में आनंदित हो रहे हैं, अंत में जिसकी आशा थी उसे नहीं पा रहे हैं।

इसीलिए श्री आदिशंकराचार्य ने 'नित्य अनित्य विवेक' होना चाहिए। उदाहरण के लिए 'आत्मा' शाश्वत है। 'मूर्ति' अशाश्वत है। संसार में लोग शाश्वत, सत्य, आनंदमय 'आत्मा' का आश्रय न लेकर 'मूर्ति' का आश्रय ले रहे हैं। मूर्ति के आश्रय से आनंद को प्राप्त करना चाहते हैं। लेकिन मूर्ति का आश्रय जब तक लेते हैं तब तक ही आनंद पाते हैं। लेकिन जब घर वापस आते हैं तो वो आनंद दिखाई नहीं देता। फिर से अशांति। कारण यह है कि अस्थाई का आश्रय लेने से तब अस्थायी आनंद ही मिलेगा।

वैसे ही शाश्वत 'आत्मा' अर्थात भगवान को ध्यान के द्वारा आश्रय लेने वाले योगी शाश्वत आनंद को प्राप्त कर रहे हैं। एक समय में उस स्थिति में वैसे ही रह जाते हैं। उस स्थिति को 'समाधि स्थिति' कहा जाता है।

इसलिए, जैसा कि श्री आदि शंकराचार्य ने कहा था, यह 'नित्यानित्य विवेक' ममुक्षुओं यानी ध्यान साधकों के लिए जरूरी है। जिनको विवेक होता है वे अनित्य के पीछे नहीं पड़ते। उनके लिए तरसते नहीं। उनके लिए अपना शक्ति और युक्ति को व्यर्थ नहीं करते।उनके खुद के जीवन को नष्ट होना नहीं चाहते।

(2) वैराग्य

इसी को 'इह आमूत्र कर्म फल भोग विराग' भी कहते हैं।

अर्थात मुमुक्षुओं को अर्थात ध्यान साधकों को इस लोक में या पर लोक में उनसे किए गए साधना के फल में ये चाहिए - वो चाहिए, ये आना चाहिए - वो आना चाहिए, ये होना चाहिए - वो होना चाहिए, ये दिखाई देना चाहिए - वो दिखाई देना चाहिए, ये चले जाना चाहिए - वो चले जाना चाहिए इस तरह के परिणामों की आशा होना नहीं चाहिए अर्थात खुद से किए गए कर्मों को, ध्यान साधना के परिणामों की अपेक्षा नहीं करना चाहिए। यही श्री आदि

शंकराचार्य जी का संदेश है।

स्वाभाविक रूप से, जो लोग ध्यान साधना करने वाले ध्यान साधना के लक्ष्य को भूल कर इस लोक में कई परिणामों की अपेक्षा करते हैं, अर्थात शारीरिक लाभ, जैसे बीमारियां कम होना, अनेक शारीरिक कठिनाईयाँ। वैसे ही मन से संबंधित इच्छायें अर्थात जीवन की समस्यायें यानी पारिवारिक समस्याएं, कठिनाइयां यानी आर्थिक कठिनाइयां दूर होना, भोग, सुख आना, जो सोचेंगे वो होने की अपेक्षा करते हैं। इन सब के लिए ध्यान करते हैं। उन्हें पूरा करने के लिए संकल्प रखते हैं। वैसे ही परलोक में भी, कई परिणाम यानी स्वर्ग लोक प्राप्त करना, पुण्य लोकों तक पहुंचने की अपेक्षा करते हैं। ऐसे आशा करने से वे अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकेंगे। इसलिए मुमुक्षु अपने द्वारा किये कर्मों के परिणमों की अपेक्षा नहीं करना चाहिए। कोई भी काम करेंगे तो निष्काम से करना चाहिए। इसका कारण यह है कि 'इस सृष्टि में जो करना है उसे करने पर जो पाना है उसे जरूर प्राप्त करेंगे'। उसके लिए चाहने की आवश्यकता नहीं। इसलिए सभी तरह के भोगों पर ममत्व को छोड़ना चाहिए। ऐसे लोग ही साधना में उन्नति कर पायेंगे। लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

(3) षट् संपत्ति

यह छः तरह के हैं। (1) दम, (2) शम, (3) तितीक्ष, (4) उपरति, (5) श्रद्ध, (6) समाधान

1) दमः दम यानी बहिरेंद्रीय निग्रह ध्यान साधकों को ये भी आवश्यक है। स्वाभाविक रूप से इंद्रियों को घोड़ों से तुलना करते हैं। ये इच्छाओं के साथ दौड़ते हैं। इच्छाओं के पीछे दौड़ने वाले इन इंद्रियों का निग्रह करना यानी नियंत्रण करना चाहिए। विषयों पर, विषय सुखों पर इंद्रियों को नहीं जाने देना चाहिए। उदाहरण में आंखों से टीवी देखना, कानों से म्यूजिक सुनाना, नाक से सुगंध लेना, जीभ से स्वाद का एहसास , त्वचा से सुखों को भोगना चाहते हो तो साधना कैसे कर पाएंगे ? साधना में तीव्रता कैसे बढ़ेगी? तीव्र ध्यान के बिना लक्ष्य कैसे पूरा किया जाएगा ?

उदाहरण में जो टीवी देखने में आकर्षित होने वाले जब कभी समय

मिलने पर टीवी ऑन करके देखते ही रहते हैं। वैसे ही घंटों-घंटों भर बिताते ही रहते हैं। जीवन में बहुत समय बर्बाद करेंगे। वैसे ही संगीत यानी गाने, पॉप म्यूजिक अर्थात क्लबों में, पब्बों में समय को बिताते रहोगे तो कितना समय बर्बाद होगा? वैसे ही स्वाद के लिए हमेशा तरह-तरह के व्यंजनो को बनाकर जो नहीं खानी चाहिए उसे खाते हुवे...केवल भोजन के लिए बहुत समय को और पैसा बर्बाद कर रहे हैं। वैसे ही शारीरिक सुखों के नाम पर बहुत अधिक प्रणय में भाग लोगे और हमेशा इस दृष्टि में रहोगे तो कितना समय व्यर्थ होगा? कितना शक्ति खर्च होगा?

इसलिए मुमुक्षुवों अर्थात ध्यान साधक 'दम' का अभ्यास करके अर्थात इंद्रियों को निग्रह करके बहुत सारा समय और ऊर्जा बचाते हैं, उसका उपयोग साधना में करते हैं और ध्यान साधना को तीव्रता से कर पाते हैं।

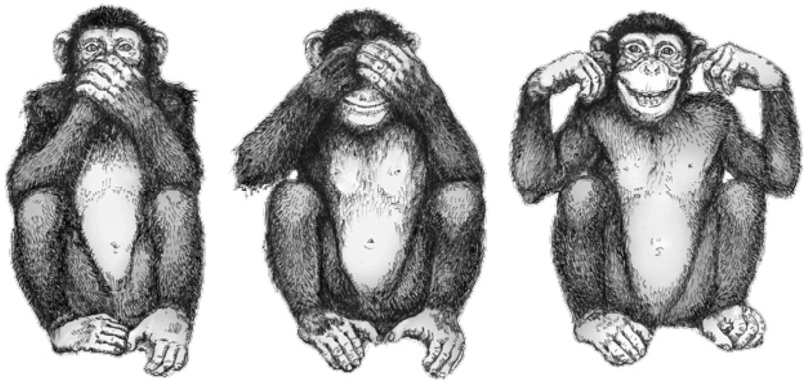

इस इंद्रिय निग्रह के बारे में ब्र्म्मर्षि पत्री जी ने गांधीजी द्वारा बोध किया गया तीन बंदरों के संदेश का इस तरह विवरण दिया है। उन्होंने कहा कि कोई भी विषयों को नहीं देखनी या सुननी चाहिए जो उसकी 'आत्मा' के विकास में अर्थात आत्मा के समीप पहुंचने में अवरोध बनती हैं। इसके अलावा कहा गया है कि ऐसे बातें नहीं बोलना चाहिए जो दूसरों की आत्मा के विकास में अवरोध बने। यह एक तरह से 'दम' को सूचित होता है।

(2) शम : शम यानी अंतरेंद्रिय निग्रह कहा जाता है।

अंतरेंद्रिय यानी मन, मन को निग्रह करना ही 'सम' कहलाता है। यह भी ध्यान साधकों के लिए बहुत-बहुत मुख्य है। क्योंकि मन को निग्रह किये बिना, अर्थात शून्य विचार स्थिति में गये बिना, मन को शून्य किये बिना, कोई आत्मा के पास नहीं पहुँच सकता, कोई आत्मा स्थिति को प्राप्त नहीं कर सकता। 'आत्म स्थिति' तक पहुंचना ही 'मुक्त स्थिति' को प्राप्त करना। इसलिए मन को निग्रह करने के लिए! मन को शून्य करने के लिए! सबसे आसान तरीका ब्र्स्मर्षि पत्रीजी द्वारा सिखाया गया 'सांस पर ध्यान' एक ही है। 'सांस पर ध्यान' द्वारा कोई भी आसानी से मन को निग्रह कर सकता है।

इसलिए पत्रीजी ने कहा कि आत्मा की प्रगति में बाधा उत्पन्न करने वाले विषयों के बारे में भी नहीं सोचना चाहिए। साथ ही, उन्होंने यह भी बहुत विस्तार से सिखाया कि दम और शम को कैसे प्राप्त किया जाए। आइए इसके बारे में जानें।

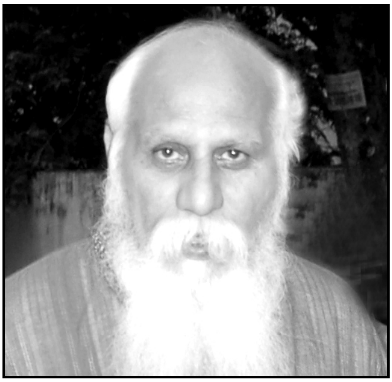

'एक घंटे के लिए... दम'

अर्जुन उवाच, 'मन महा चंचल है, यह मजबूत है, शक्तिशाली है, खतरनाक है... और इसे निग्रह करना बहुत कठिन है। वायु को नियंत्रित करना जितना कठिन है... मन को नियंत्रित करना उससे भी अधिक कठिन है।'

श्लोकः 'चंचलम हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवध्द्ढम्
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्' (भ.गी.6-34)

सही है...मन महा दुरनिग्रहवाला है इसलिए ...मन से पहले... इंद्रियों पर विजय पाना है। बहिरेंद्रिय निग्रह...'दम', अंतरेंद्रिय निग्रह 'शम'।

मन पर विजय पाना 'शम'... इंद्रियों पर विजय पाना 'दम'। 'दम' को

लंबे प्रयत्न के द्वारा प्राप्त करने वाला ही 'ध्यानी'। अधिक प्रयत्न के द्वारा 'शम' को प्राप्त करने वाला ही...'योगी'।

'इंद्रियाणां नयनेंद्रियं प्रधानं'। सभी इंद्रियों में अत्यंत मुख्य नयनें हैं। इसलिए आंखें बंद करके एक घंटा के लिए बैठना चाहिए। चाहे कुछ भी हो जाए एक घंटे तक आंखें नहीं खोलनी चाहिए। प्रारंभ में पांच मिनट आंखें बंद करके बैठना बहुत मुश्किल था। लेकिन... धीरे-धीरे बैठने को आदत होने पर आंखें खोलना मुश्किल लग रहा है। जैसे नीम का स्वाद कड़वा होने पर भी खाते-खाते मीठा हो जाता है।वैसे ही ध्यान में बैठते बैठते आराम से बैठते हैं।

हमेशा हिलने वाले शरीर को जितना हो सखे निश्चल रखना चाहिए। हमेशा बोलने वाला मुंह एक घंटे तक बंद करके रखना चाहिए। हमेशा देखने वाले आंखों को एक घंटे के लिए बंद रखना चाहिए। ये सब 'दम' है। 'दम' एक अनिवार्य क्रिया है।

बल प्रहार तो केवल इंद्रियों पर करना चाहिए... बल प्रहार मन पर असंभव है। एक घंटे तक जबरदस्ती से आंखें बंद करके बैठे रहो।

दम का अभ्यास करते वक्त मन चंचल में ही रहता है। वास्थव में 'दम' की प्रारंभिक अवस्था में मन अधिक विस्फोट होता है।हालाँकि, कई विचार पर्दे की तरह आने पर भी आंखों को नहीं खोलना चाहिए...हाथों को बंदे रखना चाहिए... आसन में से उठाना नहीं चाहिए। मुख्य रूप से हर दिन एक निर्धारित समय के अनुसार 'इंद्रिय संयम के अभ्यास' में रहना चाहिए।

वैसे ही धीरे धीरे 'दम' को हासिल करना चाहिए। जब 'दम' की प्रक्रिया के साथ 'सांस पर ध्यान' भी होता है तो हम स्वाभाविक रूप से 'शम' की मनोलय स्थिति तक पहुंच जाते हैं। एक चालीस दिन में...कोई भी 'शम' के स्थिति में योगी बन सकता है।

पहले सीढ़ी के बाद दूसरी सीढ़ी। 'दम' के द्वारा ही 'शम'। First comes first... Second comes second हाला हल विष के बाद ही अमृत... प्रसव पीड़ा के बाद ही प्रसवोत्तर।

सहन से 'दम' स्थिति को पार करने के बाद... 'शम' स्थिति में प्रवेश

करना चाहिए।

इस तरह पत्री जी ने ध्यान साधना में पहले हासिल करने वाले 'दम' 'शम' के बारे में विवरण दिया है। इस तरह प्रयत्न करने वाले इन दोनों को हासिल करते ही नहीं साधना में बहुत प्रगति भी पा सकते हैं।

(3) तितीक्षः इसी को पत्रीजी सहन कहते हैं। शिर्डी बाबा ने 'सबूरी' कहा है। स्वाभाविक रूप से ध्यान साधना करने वालों को ये भी आवश्यक है। इसका कारण है कि साधना करते वक्त ज्यादा समय बैठने की वजह से शरीर में कई दर्द आते हैं। इसी तरह ध्यान में अंतर्गत से कई बदलाव हो सकते हैं, अनुभव भी आ सकते हैं। लेकिन चाहे कुछ भी हो जाए, घबराना नहीं चाहिए, उठना नहीं चाहिए, सहन से बैठना चाहिए, सहन को दिखाना चाहिए। पत्रीजी ने अध्यापन किया है कि 'सहन ही प्रगति है'।

(4) उपरतिः मुमुक्षत्व के आकांक्षी, यानी जो शाश्वत सुख प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें अस्थायी सुख यानी रति कार्य से थोड़ा दूर रहना चाहिए, यानी कम करना चाहिए।

(5) श्रद्धः श्रद्ध का अर्थ है कि हर दिन नियमित रूप से साधना में बैठना चाहिए।आवश्यक समय को ध्यान साधना के लिए रखना चाहिए। साधना करते वक्त बड़ों से कही गई साधना नियमों का श्रद्धा से पालन करना चाहिए। जैसे गुरु के पास शिष्य श्रद्धा से बैठता है वैसे ही साधक को साधना करने में श्रद्धा दिखाना चाहिए। इतना ही नहीं श्रद्धा अर्थात त्रिकरण शुद्धि होना चाहिए।

(6) समाधानः सभी परिस्थितियों में समान व्यवहार किया जाना चाहिए। अर्थात मध्ये मार्ग को अपनाना चाहिए। इसका मतलब है कि सभी विषयों में जरूरत से ज्यादा व्यवहार नहीं करना चाहिए। और थोड़ा भी नहीं होना चाहिए। अर्थात साधकों के भोजन, नींद और अन्य सभी विषयों में मध्ये मार्ग में रहना उत्तम है।

(4) मुमुक्षत्व

साधकों को मोक्ष प्राप्त करने की तीव्र इच्छा और चाहत होनी चाहिए। उस तरह की चाहत होने पर ही इन नियमों का पालन कर पाते हैं। तीव्र साधना कर पाते हैं।कितने अवरोध आने पर भी सामना कर पाते हैं। अंत में मुक्ति को

प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए ये मुमुक्षत्व भी अनिवार्य है।

मुमुक्षत्व वाले सांसारिक, यानी शारीरिक विषयों में विरक्त होते हैं। आत्म विषयों में भी रुचि रखते हैं। उस तरह के लोग धन को प्रामुख्यता नहीं देते। ज्ञान को प्रामुख्यता देते हैं। देह सेवाओं की अपेक्षा आत्म सेवाओं को अधिक प्रामुख्यता देते हैं। देह साधनाओं को प्रामुख्यता नहीं देते। जो आत्मा साधना है वैसे ध्यान की प्रामुख्यता देते हैं। अंत में वांछित निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार, यदि ध्यान साधक श्री आदि शंकराचार्य द्वारा सिखाए गए इस साधना चतुष्टय का पालन करते हैं, तो वे साधना में अच्छी प्रगति कर पाएंगे।

यम - नियम

इनके अलावा, ध्यान करने वालों को अपने अभ्यास में तेजी से प्रगति करने के लिए, योग मार्ग के पितामह, अग्रगण्य पतंजलि महर्षि द्वारा सिखाए गए यम - नियमों का भी पालन करना चाहिए। आइए देखें कि वे क्या हैं।

यम

पतंजलि महर्षि ने कुछ यमों के बारे में बताया है। उनमें पाँच महत्वपूर्ण हैं। यम यानी नियंत्रण यानी कंट्रोल। मौलिक आध्यात्मिक जीवन सूत्रों पर आधिपत्य होना चाहिए। वे (1) सत्य, (2)अहिंस, (3) ब्र्मचर्य, (4) अस्तेय, (5)अपरिग्रह

(1) सत्य

मुंडकोपनिषत्त में कहा गया है कि 'सत्यमेव जयते'। अर्थात 'केवल सत्य की ही जीत होगी'। इसलिए, यदि कोई किसी में विजय प्राप्त करना चाहते हैं, तो उन्हें सत्य में जीना चाहिए, सत्य बोलना चाहिए और सत्य का आश्रय

लेना चाहिए।

मुमुक्षु को अर्थात ध्यान साधकों को यह नियंत्रण होना चाहिए।

(2) अहिंसा

साधकों को अहिंसा का भी पालन करना चाहिए। यानी किसी भी तरह की हिंसा नहीं करना चाहिए। मानवों को ही नहीं हमारे साथ के जीवों पर भी हिंसा नहीं करना चाहिए। परोक्ष रूप से हिंसा का कारण नहीं होना चाहिए। अर्थात मांस भक्षण नहीं करना चाहिए। सभी को प्यार देना चाहिए। सभी के साथ दोस्ती करनी चाहिए। जो लोग ऐसा व्यवहार करते हैं वे साधना में शीघ्र प्रगति पा सकते हैं।

(3) ब्र्म्हचर्य

ब्र्म्हचर्य का अर्थ है युक्त से रहना, मध्यम मार्ग को अपनाना, किसी भी विषय में अति न करना और न ही बहुत अधिक संयमित होना। भोजन के मामले में, काम के मामले में, अंत में नींद के मामले में माध्यम मार्ग को अपनाना चाहिए ।यह साधकों के लिए बहुत उपयोगी है। साधना अच्छी तरह से कर सकते हैं।

भगवत गीता में भगवान कृष्ण ने निम्नलिखित श्लोक के माध्यम से इस विषय को बताया है।

श्लोकः युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ।। (भ.गी.6-17)

ताःजो लोग आहार में संयम, विहार में संयम, जप तप इत्यादि कर्मों में संयम रखने वाला, नींद में भी संयम रखने वाला ध्यान योग से जनन मरण संसार के दुःखों से मुक्त हो रहा है।

(4) अस्तेय

इस दुनिया में चाहे आप किसी को भी देखें, हमेशा ऐसे लोग होते हैं जो आप से अधिक होते हैं। न केवल पैसों के मामले में, बल्कि संपत्ति के मामले में, कमाई के मामले में, सुविधाओं के मामले में, शिक्षा के मामले में, ज्ञान के मामले में, बल्कि कई विषयों में, जो अपने से अधिक होने वाले हमेशा रहेंगे।

ध्यान साधकों को ऐसे लोगों पर ईर्ष्या नहीं होनी चाहिए। अर्थात दूसरों के उन्नति पर आनंदित होना चाहिए। इसी को अस्तेय कहते हैं।

(5) अपरिग्रह

इतना ही नहीं दूसरों के वस्तुओं से आशा नहीं रखनी चाहिए। अपहरण न करें, किसी प्रकार का चोरी न करें। अर्थात उनको कहे बिना नहीं लेना चाहिए। चाहे वस्तु कितनी भी छोटी क्यों न हो। अंत में, जो कुछ भी बेकार हो, अन्य लोग देने पर भी जो हमें आवश्यकता नहीं, उसे कभी नहीं लेना चाहिए। बहुत सावधान रहना चाहिए। यदि हम ने ले लिया तो उसे किसी और को दे दिया जाना चाहिए। इसी को अपरिग्रह कहते हैं।

महर्षि पतंजलि द्वारा सिखाए गए ऐसे यमों का पालन करना चाहिए। नहीं तो साधकों को साधना में प्रगति नहीं पा सकते हैं। कितना साधना करने पर भी उन में थोड़ा सा प्रगति भी नहीं दिखेगा। इसलिए, यदि साधक इन बातों को सावधानी से साधना करेंगे, तो वे न केवल साधना में प्रगति करेंगे, बल्कि ये उनके लिए स्वाभाविक गुण बन जाएंगे।

इसका मतलब है कि बिना कोशिश किए ही उनका व्यवहार बदल जाएगा। इस प्रकार उनकी आध्यात्मिक प्रगति और भी तीव्र हो जायेगी।

नियम

इसी तरह पतंजलि महर्षी ने भी थोड़े नियमों को सिखाया है। पत्रि जी ने उनमें से पांच मुख्य नियमों का विवरण दिया। नियम अर्थात अनिवार्य दैनिक गतिविधियाँ। यानी हर दिन अनिवार्य से करने वाले काम।

(1) शौच (2) संतोष (3) स्वाध्याय (4) तप, (5) ईश्वर प्रणिधान

(1) शौच

शौच अर्थात साफ़ रखना - अपने कपड़ों को, शरीर को, घर के आस-पास सफाई से रखना चाहिए। आसपास कितना साफ होगा, साधना में मन को उतना आनंद मिलेगा। साधना अच्छी तरह से कर सकेंगे।

(2) संतोष

हमेशा मन को उल्लास से, संतोष से रखना चाहिए। बेकार विषयों को

सोचना, अतीत के विषयों को याद करना, भविष्य के बारे में सोचते हुए मन को खराब नहीं करना चाहिए। ऐसी विषयों से मन के ध्यान को हटाना चाहिए। वर्तमान में जीना चाहिए। हमेशा संतोष से रहने का प्रयत्न करना चाहिए।

(3) स्वाध्याय

दिन में जरूर कुछ समय आध्यात्मिक पुस्तकें यानि आत्मा से संबंधित पुस्तकें पढ़ने में व्यतीत करना चाहिए। जो पुस्तकें आत्म-ज्ञान सिखाएंगी, आत्मा के विकास में मदद करेंगी और आत्मा की शक्तियों को मजबूत करेंगी! ऐसी किताबें हमेशा पढ़नी चाहिए। अर्थात आत्मा ज्ञान, आत्मा अनुभव से लिखी गई आध्यात्मिक ग्रंथों को पढ़ना चाहिए। इसके अलावा, शरीर, मन और सांसारिक विषयों से संबंधित पुस्तकों को महत्व नहीं दिया जाना चाहिए।

यह साधकों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। मुमुक्षु के लिए जितनी महत्वपूर्ण साधना है, उतना ही महत्वपूर्ण स्वाध्याय भी है।

(4) तप

तप यानी तपस्या अर्थात कम करना। साधकों को धीरे-धीरे खाना, सोना कम कर देना चाहिए। इसका कारण यह है कि यदि आप बहुत अधिक भोजन करेंगे तो शरीर साधना में कम सहकार देगा। संयमित मात्रा में खाना खाओगे तो बहुत सहकार मिलेगा। इसलिए ठोस भोजन की जगह तरल पदार्थ, फलों को अधिक मात्रा में लेना चाहिए। वैसे ही नींद को भी कम करना चाहिए। सांसारिक विषयों में दिलचस्पी कम करते हुए उस समय को साधना और स्वाध्याय में उपयोग करना चाहिए।

(5) ईश्वर प्रणिधान

इन यमों के पालन का मुख्य कारण इस सृष्टि में सभी भगवान ही है। ऐसा कुछ भी नहीं जो भगवान नहीं है । ऐसा कुछ भी नहीं जिसमें भगवान नहीं है। इसलिए सब कुछ भगवान का स्वरूप है। यह भावना होनी चाहिए कि हर एक, हर प्राणी भगवान के स्वरूप हैं। अर्थात सब कुछ ईश्वर ही है, ऐसी भावना में होना ईश्वर प्रणीदान कहलाता है।

यह भाव साधकों के लिए अनिवार्य है। इस सत्य को जानना चाहिए। ये समझ होनी चाहिए। तभी वे हर किसी से प्यार कर सकते हैं। किसी को भी हिंसा नहीं करेंगे। वे किसी से ईर्ष्या नहीं करते, वे किसी की संपत्ति पर इच्छा नहीं रखते, वे किसी की संपत्ति नहीं चुराते, वे सृष्टि के नियमों का पालन कर पाते हैं, वे साधना में प्रगति कर पाते हैं।

इसलिए जानना चाहिए कि पतंजलि महर्षि से सिखाए गए यम, नियमों का पालन करना भी साधकों के लिए अनिवार्य है।

वैसे ही मुमुक्षु अर्थात मुक्ति को चाहने वाले श्री आदि शंकराचार्य जी से सिखाए गए साधना चतुष्टय का अनुसरण करते हुए पतंजलि महर्षि से सिखाए गए यम नियमों का पालन करते हुए ध्यान साधना करेंगे तो कोई भी साधक की प्रगति अवश्य होगा। उनमें आध्यात्मिक प्रगति स्पष्टता से दिखेगा। उस तरह के मुमुक्षु मोक्ष के अर्थात निर्वाण के समीप आ पाएंगे।

उस तरह के मुमुक्षु स्वाभाविक रूप से थोडे कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। कुछ विघ्न होते रहते हैं। ऐसे लोगो को उन विघ्नों से सावधान होना पड़ेगा। यदि आप इसी तरह सावधानी से साधना जारी रख सकें तो आप निश्चित रूप से लक्ष्य तक पहुंच जायेंगे। अर्थात मुक्ति को प्राप्त कर पाएंगे। मुक्त स्थिति को प्राप्त कर सकेंगे। मुमुक्षुओं को उस तरह के अवरोधों को मुमुक्षु के शत्रु कहलाते हैं। मुमुक्षुओं के लिए शत्रु कौन से हैं इनहें ब्र्मर्षि पत्रीजी ने अच्छे तरह से विवरण है। वह क्या है उन्हें जानेंगे।

मुमुक्षु के शत्रु

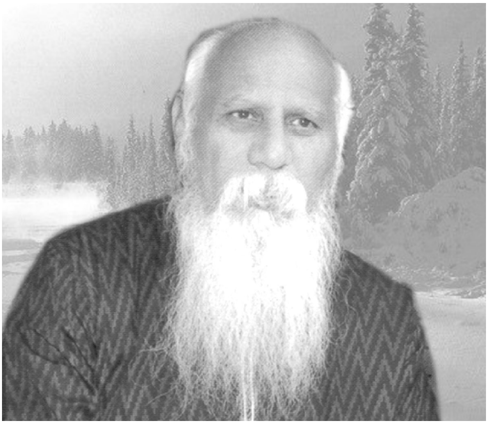

चार प्रकार के शत्रुओं से....मुमुक्षु को अपने आप की रक्षा करनी चाहिए। वे हैं:

1) भय **2) सीमित ज्ञान**

3) सिद्धियों से आने वाला अहंकार 4) बुढ़ापे की आलसी भावनाऐं

1) 'भय'

'भय' मुमुक्षु का पहला शत्रु है। मुमुक्षु को सबसे पहले सभी प्रकार के भय पर काबू पाना होगा। तभी ज्ञान का अंकुर फूटेगा।

भय अर्थात अंधेरे का डर, चोरों का डर, जंगली जानवरों और जानवरों से डर।

उदाहरण के लिए, ध्यान करने वाले जब ज्यादा समय तक ध्यान में बैठते हैं तो उन्हें विभिन्न शारीरिक समस्याऐं आते हैं। पीठ दर्द, पैर दर्द और तरह-तरह के कष्ट हो सकते हैं। यदि आप इनसे डरकर साधना करना छोड़ देंगे तो आप साधना में आगे नहीं बढ़ पायेंगे।

साथ ही आंतरिक रूप से नाड़ी शुद्धि होगा, तब तरह - तरह दर्दे हो सकते हैं, मौजूदा दर्द बढ़ सकता हैं, जो दर्द अभी तक नहीं है वो दर्दे आ सकते हैं। लेकिन ये सभी अंततः लाभकारी ही हैं, हानिकारक हो नहीं सकते हैं। यदि आप इनसे डरकर साधना करना बंद कर देंगे तो आपको साधना करने से जो

लाभ मिलते हैं वो लाभ नहीं मिल पाएंगे।

साथ ही साधना करने वालों को तरह-तरह के अनुभव भी आ सकते हैं। भयानक विषयों को, घटनाओं को और दृश्यों को देख सकते हैं। और कई तरह के अनुभव भी आ सकते हैं। किसी भी स्थिति में डर कर साधना नहीं करेंगे तो साधना के द्वारा जो ज्ञान मिलता है वो नहीं मिलेगा। प्रगति को प्राप्त नहीं कर सकते। बहुत नष्ट हो जाओगे।

इतना ही नहीं सत्य को बोलने के लिए डरना नहीं चाहिए, धर्म का आचरण करने के लिए डरना नहीं चाहिए। दूसरे क्या सोचेंगे या कहेंगे इससे ड़रकर आप से किए जाने वाले काम और साधना को छोड़ना नहीं चाहिए। इस मार्ग में कई संदर्भों में साहसी निर्णयों को लेना होगा। डर के मारे उन कामों को करना नहीं छोड़ना चाहिए। परिवार में रहने पर भी, समाज में रहने पर भी, अपनी साधना, लक्ष्य साधना के बारे में आलोचना करने वालों को नजर अंदाज करना चाहिए। उनकी आलोचनाओं से डरना नहीं चाहिए। साधना करने वालों के लिए भय बड़ा अवरोध है। इसीलिए सभी तरह के भयों को छोड़कर साधना करेंगे तो ज्ञान को पाना शुरू होगा।

2) 'सीमित ज्ञान'

लेकिन प्राथमिक, सीमित ज्ञान को 'पूर्ण ज्ञान' सोचने का खतरा हमेशा बना रहता है।

जो लोग ध्यान साधना करते हैं उन्हें स्वाभाविक रूप से कुछ अनुभव में आते हैं। कुछ अज्ञात विषयों को ज्ञात होगा। वैसे ही परलोक के गुरूओं से कुछ संदेश मिल सकते हैं। यदि वह सोचता है कि उसके पास महान ज्ञान है, वह एक महान स्थिति तक पहुंच गया है, वह सोचता है कि मैं सब कुछ जानता हूं, और जो थोड़ा ज्ञान उसने प्राप्त किया है उस पर गर्व करते हुए, जैसे कि उसने पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया है वह सभी को कहता है कि मैंने महान ज्ञान पाया है, इस तरह कहने पर वह साधना में प्रगति नहीं कर सकता, बल्कि पतन होने का खतरा है।

अतः साधकों को इस विषय को हमेशा याद रखना चाहिए। इस अनंत

सृष्टि में जो अनंत ज्ञान है उसमें जो तुमने जाना है वो नाखून जितना, लेकिन जो जानना चाहिए वो पहाड़ के जैसे है इस विषय को हमेशा याद रखना चाहिए। जान लें कि चाहे आप कितना भी जानते हो और जानने के लिए बहुत है, यह जानकर और जानने का प्रयास करना चाहिए बल्कि तुम्हारा व्यवहार ऐसा नहीं होना चाहिए जैसे सब कुछ तुम ही जानते हो। तुम जो जानते हो वही सही है ऐसी भावना नहीं होनी चाहिए। सभी का सुनना, सभी के पास से और सीखने का प्रयत्न करना चाहिए। तुम्हें जानना चाहिए कि सब के पास से बहुत कुछ सीखने के लिए होता है, जो तुम जानते नहीं हो।

इसीलिए पत्रीजी ऐसा कहते हैं जो सोचता है कि 'मैं शायद कुछ ही जानता हूँ' वह उस व्यक्ति की तुलना में बेहतर समझ के साथ जीता है, जो सोचता है कि 'मैं सब कुछ जानता हूँ'।

पत्री जी ने यह कहा कि जो ऐसा सोचते हैं 'मैं ही जानता हूं' उनसे अधिक बुद्धिमान वह है जो सोचते हैं कि 'मैं जानता हूं, शायद दूसरा व्यक्ति भी जानता है'।

अतः साधना के प्रारंभ दशा में प्राप्त ज्ञान को महान ज्ञान एवं पूर्ण ज्ञान न समझकर साधना को जारी रखना चाहिए।

इसलिए, मुमुक्षु का दूसरा शत्रु जिसे 'सीमित ज्ञान' कहा जाता है, वे इससे छुटकारा पाएंगे तो सिद्धों को प्राप्त करेंगे।

3) 'सिद्धियों से आने वाला अहंकार'

सिद्धों को प्राप्त करने पर गर्व बढ़ेगा तो फिर से पतन की ओर ले जाता है। सिद्धों का तो अर्जन करना ही है। लेकिन हमारे गर्व से खुद को बचाना ही होगा।

उस तरह साधना को तीव्रता से जारी रखने वाले साधकों को कुछ अलौकिक शक्तियां प्राप्त हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, कुछ लोगों की दिव्य नेत्र अर्थात तीसरी आँख उत्तेजित हो सकता है। कुछ लोगों को सूक्ष्म शरीर बाहर आ सकता है। और कुछ लोग पिछले जन्मों को देख सकते हैं। कुछ लोगो को देखा जा सकता है, और भविष्य में होने वाले घटनाओं के बारे में जाना जा

सकता है, और कई अन्य शक्तियाँ प्राप्त कर सकते हैं।

लेकिन जब ऐसी शक्तियों को प्राप्त करने पर, खुद को सोचते हैं कि वे महान बन गए हैं और उनके बारे में डींगें बोलते हुए, प्रदर्शन करते हुए, अहंकार से व्यवहार करने वाले, वे अपनी शक्ति खो कर, ध्यान साधना के शुरुआत की स्थिति में आ जाते हैं, इसलिए उन्हें इस स्थिति को भी पार करना होगा।

इसलिए मुमुक्षु का तीसरा शत्रु 'सिद्धियों से आने वाला अहंकार' है।

4) बुढ़ापे की आलस्य भावनाऐं

बुढ़ापे का आलस्य भाव ही मुमुक्षु का अंतिम शत्रु है।

अर्थात बुढ़ापे में रहने वाले स्वाभाविक रूप से ही कोई भी काम करने में उत्साह नहीं दिखाते हैं। तब तक युवा अवस्था में कड़ी मेहनत करते हैं, बहुत कुछ काम करते हैं, बहुत कुछ हासिल करते हैं, हर काम करने में संकोच नहीं करते हैं। कड़ी मेहनत करते हैं। जो हासिल करना चाहते हैं उसे हासिल भी करते हैं। लेकिन बुढ़ापा आते ही स्वाभाविक रूप से ही उनमें शक्ति कम हो जाती है। पहले का उत्साह उनमें नहीं दिखाई देता। कोई भी काम करने में वे समझते हैं कि अब तक बहुत कड़ी मेहनत कर चुके और अब मेहनत नहीं कर पाएंगे, और ऐसे भाव में रहते हैं कि वो अब हमसे नहीं होगा। यही कारण है कि वे वास्तव में वह कार्य नहीं करते हैं। अगर करना भी पड़े तो बहुत लापरवाही से करते हैं। कितना भी समय हो विश्रांति से रहना चाहते हैं। कुछ भी काम नहीं करना चाहते हैं, बकवास करने में दिलचस्प रहते हैं। मेहनत नहीं करते हैं। वैसे ही बैठकर समय को भी व्यर्थ करते हैं। जो काम कर पाते हैं वो काम को भी नहीं करते। उनके बुढ़ापे के कारण से ही ऐसा भाव, ऐसा व्यवहार करते हैं। इसी को बुढ़ापे की आलस्य भावना कहते हैं।

इसी प्रकार, मुमुक्षुओं यानी साधकों को साधना पथ में प्रवेश करने के बाद किसी भी विषय में आलसी नहीं होना चाहिए। ये काम मैं कर पाऊंगा? या नहीं? ऐसा सोचना नहीं चाहिए। ये मुझ से होगा? या नहीं? ऐसा संशय होना नहीं चाहिए। बुढ़ापे में जो व्यवहार करते हैं, उनके तरह हमारा व्यवहार नहीं होना चाहिए।

कारण यह है कि ध्यान साधना करने वालों को स्वाभाविक रूप से ही शक्ति बढ़ती रहती है। इसीलिए वे हर काम को आसानी से कर पाते हैं। उनमें वो समर्थता होती है। लेकिन मैं बुढा हो गया, मैं नहीं कर पाऊंगा ना, क्या मुझ से होगा? ऐसा भाव नहीं होना चाहिए। उनमें ऐसा भाव होने पर वे कुछ भी नहीं कर पाएंगे।

'यद्‌भावम तद्‌भवति' ऐसा श्री कृष्ण भगवान ने कहा है ना। इसीलिए मुमुक्षुओं को उम्र के बारे में सोचना नहीं चाहिए। हमेशा मेरी उम्र इतना, मेरा उम्र इतना, करके गणांक नहीं करना चाहिए। जानना चाहिए कि ध्यान साधकों को उम्र से संबंध नहीं है।

मुमुक्षुओं में बुढ़ापे के उम्र वाले ही नहीं, युवावस्था उम्र वाले भी होते हैं। वैसे ही युवावस्था में रहने पर भी उस तरह के भाव में रहने पर साधना में प्रगति प्राप्त नहीं कर पाते हैं। कारण यह है कि नाम के वास्ते ही युवावस्था में है लेकिन भावनाओं में बुढ़ापे की भावनाएं हैं। हर विषय में मतलब क्या इतना समय बैठ पाऊंगा? क्या हिले बिना रह सकूंगा? पीठ दर्द होगा क्या? पैरों में दर्द होगा क्या? ऐसा सोचते रहते हैं। चलो एक घंटा बैठेंगे! चलिए आधा घंटा बैठेंगे! ऐसा पहले से ही निर्णय करते हैं। वे बैठ सकते हैं लेकिन ऐसा पहले से ही निर्णय लेने की वजह से बैठ नहीं पाते। बैठते भी नहीं। इसी को बुढ़ापे की आलस्य भावना कहते हैं।

इसके अलावा जो लोग इस साधना मार्ग में कोई भी काम करने से झिझकने वाले, संदेह करने वाले, क्या काम कर पाऊंगा? या नहीं? ऐसा सोचने वाले, जो लोग संदेह करते हैं कि ऐसा नहीं कर पाऊंगा, इस तरह के लोग बुढ़ापे के आलस्य भाव में ही हैं। उस तरह के लोग हमेशा के लिए साधना में प्रगति प्राप्त नहीं कर सकते, बढ़ नहीं सकते, निर्वाण को प्राप्त नहीं कर सकते।

क्योंकि निर्वाण मार्ग में आने वाले अर्थात ध्यान साधना मार्ग में आने वाले जल्दी से उनके लक्ष्य प्राप्त करने के लिए ब्र्म्मर्षि पत्री जी ने सृष्टि के सिद्धांतों का अनुसरण करने के लिए कुछ विषय बताते रहते हैं। क्योंकि इस सृष्टि में 'जो देते हैं उसी को पाते हो'। इसीलिए वे हर एक को ध्यान की स्थिति

बढ़ाने, ज्ञान को बढाने के लिए सभी को ध्यान सीखाने के लिए कहते हैं। सत्य को, धर्म को सीखाने के लिए कहते हैं। या ऐसे कार्यक्रमों में भाग लेने को कहते हैं। या ऐसे कार्यक्रमों मे सहकार दीजिए। यह सब केवल साधना के मार्ग में बढ़ने के लिए, शीघ्रता से निर्वाण को प्राप्त करने के लिए ही है।

लेकिन ऐसे विषयों में कई लोगों के कदम पिछे खींचते हैं। कारण यह है कि उनमें बुढ़ापे में आने वाले भाव ! उन्हें बस एक ही शंका है। क्या मैं कह सकूंगा ? क्या मैं वहां जा सकूंगा? अगर औरत हो तो हां मैं औरत ही हूँ ? मैं क्या कर सकता हूँ? ऐसा सोचते हैं। क्या उस कार्यक्रम को मैं आयोजित कर सकूंगा? इतना बड़ा काम मैं कर सकता हूँ? क्या वह मुझ से हो पाएगा? वह मुझसे कहाँ हो पाएगा? मैं अकेला कैसे कर सकता हूँ? ऐसा सोचते हुए मुझे से नहीं होगा, ऐसा तय कर लेते हैं। कम से कम वे कोशिश भी नहीं करते। इसे बुढ़ापे का आलस्य भावना कहते है।

कुछ लोग वे कर पाने पर भी कहते हैं कि सभी साथ नहीं आ रहे हैं। कदम पीछे हटाते हैं। यानी, मैं अकेले नही कर पाऊँगा, यह भी बुढ़ापे की आलस्य भावना है।

साथ ही ज्ञान से भरी किताबें पढ़ने के मामले में भी कई लोग कहते हैं कि मैं वह किताब नहीं पढ़ सकता, अगर पढ़ भी लूंगा तो क्या वह समझ में आ जाएगा? ये सब हमसे कहाँ होगा ? वैसे सोचते हुए बिना प्रयास किये ही रुक जाते हैं। किसी किताब को नहीं पढ़ते, कुछ लोग कुछ किताबें नहीं पढ़ते।

ये सब बुढ़ापे के आलस्य भावनाएं हैं।

इसीलिए, ध्यान साधक जब ध्यान अधिक करते हैं तो उनकी शक्ति बढ़ती रहती है। कोई भी काम कर सकते हैं। कोई भी पुस्तक पढ़ सकते हैं। पत्री जी ने कहा है कि जो कुछ भी हासिल कर सकता है, किसी भी मामले में संशय किए बिना, पीछे हटे बिना और आलस्य किए बिना काम करने वाले ही बुढ़ापे की आलस्य भावनाओं से मानो बाहर आ गये है। वैसे लोग ही ध्यान साधना में प्रगति कर पाएंगे। निर्वाण को अनेक जन्मों के बाद नहीं, इस जन्म में ही पाएंगे।

भय, सीमित ज्ञान, सिद्धियों से आने वाला अहंकार, और बुढ़ापे की आलस्य भावनाएँ... इन चार शत्रुओं को जीतना है। हमें हर समय इन शत्रुओं के प्रभाव से स्वयं को रक्षा करना चाहिए।

- ब्र्म्मर्षि पत्रीजी

ब्र्म्मर्षि पत्रीजी द्वारा सिखाए गए ऐसे विषयों में भी, यदि कोई सावधानी से अभ्यास करता रहे, तो वह धीरे-धीरे मुक्ति की स्थिति यानी निर्वाण की स्थिति प्राप्त कर सकेंगे।

इसीलिए, मुक्त स्थिति कैसा होता है? किस प्रकार के लोग मुक्त स्थिति को प्राप्त करते हैं? उस स्थिति को प्राप्त करने वाले लोगों का व्यवहार कैसा होता है? वे किस तरह की भावना से रहते हैं? उनका जीवन जीने का तरीका कैसा होता है? उन विषयों को जानेंगे। ऐसी स्थिति में पहुँचने वाले व्यक्ति को धीरे-धीरे यह समझ में आता है कि वह कौन है। धीरे-धीरे वह अपने आप को जानने लगता है।

उन्हें पहले यह पता लगता है कि यह भौतिक शरीर, जो इंद्रियों से युक्त है, वह स्वयं नहीं है। इस प्रकार, ध्यान साधना करने वाला मुमुक्षु... ऊपर उल्लेखित विधि से श्री आदि शंकराचार्य, पतंजलि महर्षि, ब्र्म्मर्षि पत्रीजी जैसे अनुभवी महात्माओं द्वारा सिखाए गए नियमों का पालन करते हुए 'सांस पर ध्यान' केंद्रित करके तीव्र ध्यान साधना करते वक्त इंद्रियों से अतीत की स्थिति तक पहुँचते हैं। उस स्थिति में, इन इंद्रियों से जो ज्ञान जाना नहीं जा सकता अर्थात इस सृष्टि से संबंधित विषयों को जानते रहते हैं। इस तरह इन इंद्रियों से जो काम नहीं किया जा सकता वो काम भी कर पाते हैं। उन्हें ही अतीन्द्रिय शक्तियाँ या दिव्य शक्तियाँ कहा जाता है। ऐसे ज्ञान को अतींद्रिय ज्ञान या दिव्यज्ञान कहा जाता है।

ऐसे पहली बार इस शरीर से दूसरों की आंखों को नजर न आने वाला शरीर, जिसे सूक्ष्म शरीर कहते हैं, बाहर आता है। वो शरीर हवा में तैरता रहता है। उस सूक्ष्म शरीर के साथ, पहली बार वह अपने भौतिक शरीर को अचेतन अवस्था में देखते हैं। तब वह सोचते हैं, अरे! मैं यहाँ कैसे हूँ? तब सवाल आता

है कि तो वो कौन है? क्या वो शरीर मैं नहीं हूँ? आप आश्चर्यचकित हो जाते हैं। तब धीरे-धीरे आपको समझ में आता है। अनुभव पूर्वक यह जान लेते हैं कि वह शरीर मेरा है, लेकिन वह मैं नहीं हूँ। तब सोचेंगे। मैं कौन हूँ? तब खुद से प्रश्न करते हैं। उस दिशा में विचार करते रहते हैं। धीरे-धीरे वे बहुत सारी बातें जान सकेंगे।

तब से उनका व्यवहार बदल जाता है, काम बदल जाते हैं। महत्व बदल जाते हैं। कारण यह है कि अब तक जिस शरीर को अपना समझा, वह शरीर मैं नहीं हूँ, यह जान लेते हैं। इसलिए शरीर और शरीर से संबंधित विषयों को महत्व नहीं देते हैं। शरीर के सुखों, शारीरक योग्य, शरीर की सौंदर्यता, शरीर के सजावट को महत्व नहीं देते हैं। समय और धन को शारीरिक आवश्यकताओं के लिए बर्बाद नहीं करते हैं। ध्यान साधना और साधनामार्ग के लिए अधिक समय देते रहते हैं, आत्मा से संबंधित कार्यों और आत्मा की सेवाओं के लिए धन खर्चा करते रहते हैं। साथ ही, शरीर से संबंधित विषयों को, शारीरिक रूप से निर्मित परिवार के लिए, रिश्तेदारों के लिए, दोस्तों को भी महत्व नहीं देते हैं। इसका मतलब है कि वे फंक्शन्स और पार्टियों में रुचि नहीं दिखाते। इस

तरह धीरे-धीरे उनके व्यवहार में बदलाव आता रहता है।

उनमें यह जिज्ञासा बढ़ती रहती है कि मैं कौन हूँ? मुझे क्या करना चाहिए? इसी दिशा में वे अध्ययन करते रहते हैं। ध्यान साधना न केवल जारी रखते हैं, बल्कि उसे और तीव्र कर देते हैं। वे घंटों-घंटों तक ध्यान करते हैं। कई योगियों की पुस्तकें पढ़ते रहते हैं। ज्ञानियों के संदेश सुनते रहते हैं। तब उन्हें मूल रूप से यह जान सकते हैं कि मैं आत्मा हूं। और वो 'आत्मा' साधारण नहीं है। वह सबका आधार है, सब से अतीत है, अत्यंत शक्तिशाली है, तेजस्वी है, सत्य है, चिदानंद स्वरूप है। इतना ही नहीं, यह भी जान सकते हैं कि वही आत्मा परमात्मा है, परब्रह्म है, परमेश्वर है, शिव है।

इस प्रकार, पुस्तकों के माध्यम से, योगियों के संदेशों के माध्यम से यह पता चलता है कि 'आत्मा' मैं ही हूं। लेकिन यह पूरी तरह से अनुभव में नहीं आता। इसलिए, उत्सुकता के साथ साधना को जारी रखना ही नहीं, बल्कि आत्म-चिंतन भी करते रहते हैं। तब धीरे-धीरे खुद के बारे में और भी कुछ विषय जानने लगते हैं। यह शरीर ही नहीं, बल्कि जो अंतःकरण मन और बुद्धि भी मैं नहीं हूं, यह जब समझ में आ जाता है, तो उनकी व्यवहार में और भी बदलाव आ जाता है। महत्वताएं भी बदलते हैं।

मन से संबंधित इच्छाओं की परवाह नहीं करते। मन से संबंधित षड्रिपु जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, और मात्सर्य को नियंत्रण में रखते हैं। ये जानते हैं कि खुद के अलावा किसी और को महत्व नहीं देनी चाहिए। मन को महत्व नहीं देते। उसे नियंत्रण में रखते हैं। मन से संबंधित आदतें, चाहे वह भोजन के मामले में, या व्यवहार के मामले में, यदि वे किसी भी प्रकार से हानि पहुँचाती हैं, तो उन्हें हटा देते हैं। शराब पीना, धूम्रपान करना, व्यभिचार से दूर रहते हैं और उन्हें छोड़ देते हैं। इस तरह साधना, स्वाध्याय, सांगत्य को और अधिक तीव्रता से करते हैं।

तब वे उनके बारे में कुछ और बातें जानने लगते हैं, क्योंकि 'जागृत अवस्था में मन के द्वारा आथी कठिनाइयों को देखकर दुःखी होते हैं। इसी प्रकार, 'स्वप्न अवस्था में भी मन की कल्पनाएँ सपनों के रूप में चलती रहती हैं।' लेकिन 'सुषुप्ति अवस्था में पहुँचने पर, वहाँ मन नहीं होने पर भी यह

जानते हैं कि मैं हूँ।' तब समझ में आता है कि 'मन', 'बुद्धि' भी मैं नहीं हूं, इसके साथ-साथ मन से संबंधित निरंतर चिंतन करने वाला 'चित्', हर किसी में 'मैं' और 'मेरा' कहकर जो अहं को प्रदर्शन करने वाला 'अहंकार' भी मैं नहीं हूं।

इसी प्रकार, जब यह शरीर, ज्ञानेंद्रियाँ और कर्मेंद्रियाँ मैं नहीं हूँ, तो इनका आधारभूत कारण बने पंचभूत भी मैं नहीं हूँ, यह स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार अध्ययन करते हुए यह समझ में आता है कि शरीर में होने वाले कार्यों का कारण प्राण है, अर्थात प्राणवायु जिसे 'पंचप्राण' भी कहते हैं। उन्हीं को

(1) प्राण, (2) अपान, (3) व्यान, (4) उदान, (5) समान कहते हैं। 'आत्मा' जब शरीर से बाहर चले जाती है, तो यह प्राणवायु का संचार रुक जाता है। उस समय, जब ये कार्य नहीं करते, तब यह स्पष्ट हो जाता है कि पंचप्राण भी मैं नहीं हूँ।

इसी तरह, यह जान लेते हैं कि स्थूल शरीर भी मैं नहीं हूं, तो इससे संबंधित रक्त, मांस आदि सप्त धातुएँ भी मैं नहीं हूं, यह स्पष्ट हो जाता है। शरीर से संबंधित कर्मेन्द्रिय भी मैं नहीं हूं, यह ज्ञात होता है।

इसके अलावा, साधना बढ़ने के साथ स्थूल शरीर से 'सूक्ष्म शरीर' बाहर आता है। साधना और बढ़ने पर 'सूक्ष्म शरीर' से 'कारण शरीर' बाहर आता है। तब यह भी समझ में आता है कि यह 'सूक्ष्म शरीर' भी मैं नहीं हूं। जैसे-जैसे साधना बढ़ती है, यह स्पष्ट होता है कि 'कारण शरीर' भी मैं नहीं हूँ। तब यह समझ में आता है कि स्थूल शरीर कहलाने वाला अन्नमय कोश... सूक्ष्म शरीर कहलाने वाला प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश... और कारण शरीर कहलाने वाला आनंदमय कोश भी मैं नहीं हूँ।

और मैं कौन हूँ? इस प्रकार की विचारना करते वक्त मैं नित्य मुक्त 'आत्मा' हूं इसे अनुभवपूर्वक जान पाते हैं। तब यह भी अनुभव होता है कि चतुर्विद पुरुषार्थ (1) धर्म, (2) अर्थ, (3) काम, (4) मोक्ष भी मुझे नहीं हैं।

तब भी यदि और जांच करेंगे कि यह सब मैं नहीं हूं, तो मेरे पुण्य कहां हैं? पाप कहां हैं? यह सब तो शरीर और मन से संबंधित हैं ना? जब शरीर और मन मैं नहीं हूं, तो उनसे संबंधित पुण्य या, पाप भी मेरे नहीं हैं, यह समझ

में आता है। इतना ही नहीं, उनसे आने वाला सुख या, दुःख भी मेरा नहीं है, यह भी स्पष्ट हो जाता है।

यह सब वेदों में दिए गए ज्ञान से अतीत होता है। अतः यह स्पष्ट है कि वेद मैं नहीं हूँ। जब वेद मैं नहीं हो सकता, तो वेदों में बताया गया यज्ञ मैं नहीं हूँ? जब यज्ञ मैं नहीं हो सकता, तो यज्ञों में उच्चरित होने वाले मंत्र मैं कैसे हो सकता हूँ? अतः मैं न तो वेद हूं, न यज्ञ हूं, न मंत्र हूं, न पवित्र तीर्थ हूं। मैं भोजन पदार्थ नहीं हूं, मैं भोजन करने वाला मैं नहीं हूं, यह स्पष्टता से मालूम होता है।

ये सभी से संबंधित न होने वाला 'आत्मा' हूँ ऐसा अनुभव में आता है। इसलिए उन सबमें रुचि नहीं होती। न उन्हें करना चाहते हैं, न ही उन्हें प्राप्त करना चाहते हैं। यह समझ में आता है कि मेरा इन सबसे संबंध नहीं है। इसीलिए उस स्थिति अर्थात 'निर्वाण स्थिति' को प्राप्त करने वाले उन के बारे में न सोचते हैं। न ही ऐसे काम करते हैं।

इसीलिए श्रीकृष्ण भगवान ने भगवद्गीता के द्वारा अर्जुन को इस प्रकार सिखाया।

श्लोः त्रैगुण्याविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन
निर्दवन्द्वो नित्यसत्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान।। (भी.गी.2-45)

ताः हे अर्जुन, वेद त्रिगुणात्मक होते हैं और संसार के विषयों को बताते हैं। तुम त्रिगुणों को छोड़ दो, जो द्वंद्वों में न हो, निरंतर शुद्ध सत्व को आश्रय लेने वाले बनो। योगक्षेम की दृष्टि से रहित होकर आत्मज्ञानी बनो।

अर्थात मुक्त स्थिति में रहने वाले लोग पाप नहीं करते, पुण्य कार्य नहीं करते, यज्ञ नहीं करते, वेद ज्ञान के बारे में सोचते नहीं, मंत्रों का जाप नहीं करते, पुण्य तीर्थों की सेवा नहीं करते। इसका कारण यह है कि वे इन सभी से अतीत 'आत्मा', अर्थात परब्रह्म, अर्थात शिव ही 'मैं' हूँ, यह समझ में आता है।

इससे यह समझना चाहिए कि जो लोग पुण्य के लिए पुण्य कार्य करते रहते हैं, वेदों का पाठ करते रहते हैं, मंत्रों का जाप करते रहते हैं, तीर्थ स्थानों की यात्रा करते हैं, नदियों में स्नान करना, वहाँ पूजा-अर्चना करते रहते हैं, ऐसा करने का उपदेश देते हैं, वे अभी तक निर्वाण की स्थिति प्राप्त नहीं कर पाए

हैं। निर्वाण की स्थिति प्राप्त करने वाले व्यक्ति इन सब से अतीत रहते हैं।

इसके अलावा, वे समझते हैं कि उन्हें मृत्यु नहीं है। इसलिए, जो लोग निर्वाण की स्थिति में होते हैं, वे मृत्यु से नहीं डरते। वे मृत्यु के बारे में नहीं सोचते। इस स्थिति में रहने वाले पहले से ही कह देते हैं कि वे निश्चित दिन शरीर को त्याग कर देंगे। क्योंकि यदि मृत्यु होती है, तो डरना होगा। जिसका मृत्यु नहीं है, वो क्यों डरेंगा? इसलिए, जो लोग मृत्यु से डरते हैं, यह समझना चाहिए कि वे अभी तक निर्वाण की स्थिति तक नहीं पहुंच पाए।

जब यह समझ में आता है कि अगर शरीर ही मैं नहीं हूँ, तो यह भी स्पष्ट होता है कि शरीर से संबंधित स्त्री, पुरुष, और नपुंसक जैसी जातियों का भेद भी मुझे नहीं है। इसके अलावा, यह भी समझ में आता है कि शरीर का जन्म होता है कुछ समय के बाद मृत्यु होती है। अर्थात, जो मरता है, जो जन्म लेता है, वह शरीर है, वो मैं नहीं हूँ। तब यह जान लेता है कि उसका न तो जन्म होता है, न ही मृत्यु होता है। इस प्रकार, जब इस तरह विचारना करने से आश्चर्यजनक कई विषय समझ में आते हैं। जिनका कोई जन्म नहीं है तो, उनके लिए माता, पिता, रिश्तेदार, मित्र, गुरु, या शिष्य कैसे हो सकते हैं? इसलिए, जो लोग निर्वाण की स्थिति में होते हैं, अर्थात जिन्होंने यह जान लिया है कि 'मैं आत्मा हूँ,' उनके लिए इन सब से कोई संबंध नहीं है ऐसा व्यवहार करते हैं। वे इन सबके बारे में कोई विचार नहीं करते। वे इनके प्रति आसक्ति नहीं रखते और इनसे निर्लिप्त होकर व्यवहार करते हैं। उन पर ममत्व नहीं होता। 'मेरे लोग, हमारे लोग' जैसी सोच ही नहीं होती। 'मेरा-हमारा', 'मेरे-हमारे' जैसी विचार या ममत्व उनके भीतर नहीं होता। यानी ऐसे लोग 'मेरा-हमारा' का भेद नहीं करते। ऐसे स्थिति में उनकी व्यवहारिकता दुनिया के लोगों को बहुत विचित्र लगती है और आश्चर्य भी उत्पन्न करती है। लेकिन उन हें समझ नहीं सकते कि यह स्थित निर्वाण की पराकाष्ठा है। हालांकि, यह समझा जा सकता है कि वे निर्वाण की स्थिति को प्राप्त कर चुके हैं।

इससे यह समझना चाहिए कि जो संपत्ति, धन, कमाई, परिवार, पत्नी-पति, पुत्र, और रिश्तेदारों के प्रति आसक्त रहते हैं, या उनके बारे में चिंता करते रहते हैं, रिश्तेदारों से संबंधित कार्यक्रमों को महत्त्व देते रहते हैं, वे चाहे कितनी

भी साधना कर लें या कितने भी अनुभव प्राप्त कर लें, फिर भी वे निर्वाण की स्थिति तक नहीं पहुँच पाते हैं।

अंत में जान सकते हैं कि मैं सर्वव्यापक हूँ अर्थात सर्व देशों में, सर्व कालों में, सभी प्राणियों में और सभी वस्तुओं में व्याप्त हूँ। इसका अर्थ यह है कि 'सब कुछ मैं ही हूँ, सब मैं ही हूँ' तब यह सत्य अनुभव में आता है। जिसने यह अनुभव प्राप्त किया है, सब कुछ वे ही हैं ऐसा व्यवहार करते हैं। किसी भी जीव को कष्ट होता है, तो उसे अपना ही कष्ट समझता है। किसी को भी हानि होती है, तो वो हानि खुद को हुआ समझता है। जीवों और पशुओं की हिंसा को सहन नहीं कर सकते। वे इसे देख भी नहीं सकते। इसका कारण यह है कि वे सब कुछ स्वयं को ही मानते हैं। ऐसे लोग प्राणियों पर हो रही हिंसा के खिलाफ लड़ाई करते हैं। उसे रोकने का प्रयास करते हैं।

लहरें और समुद्र एक ही हैं
(जीव और भगवान एक ही हैं)

इतना ही नहीं 'सब कुछ एक ही है, मैं ही सब कुछ हूं' यह समझ में आने पर, तो किसके प्रति अनुराग होगा? किसके प्रति द्वेष होगा? इसलिए राग और द्वेष को प्रदर्शित नहीं करते हैं। ऐसे लोग जो है उसे दिए बिना नहीं रह सकते। वे छिपाते नहीं, इसका मतलब है कि लोभ को प्रदर्शित नहीं करते। इसी तरह वे किसी के प्रति मोह का प्रदर्शन नहीं करते। अर्थात, लाभ और मोह से अतीत रहते हैं। इसे ही 'निर्वाण स्थिति' कहा जाता है।

ऐसी 'निर्वाण स्थिति' को श्री आदि शंकराचार्य ने अद्भुत तरीके से अपनी 'निर्वाण शट्कम' में विवरण दिया है। आइए, हम उन बातों को जानें।

निर्वाण षट्कम

श्री शंकराचार्य जी ने मानवों को जो महान उपहार दिया है, वह निर्वाण षट्कम है। यह ज्ञान का सार 6 श्लोकों में निहित है। आइए इसे विस्तार से समझें।

श्लोः मनोबुद्ध्यहंकार चित्तानि नाहं
न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे ।
न च व्योम भूमिर्न तेजो न वायुः
चिदानन्दरूपः शिवोऽहम शिवोऽहम ।।

'मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार' नामक चार प्रकार की वृत्तियों से युक्त अंतःकरण मैं नहीं हूं। नाक, आंख, कान, जीभ जैसे ज्ञानेंद्रियां मैं नहीं हूं।

आकाश, पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु नामक पंचभूत मैं नहीं हूं। मैं चिदानंद स्वरूप शिव हूं, मैं शिव हूं।

श्लोः **न च प्राण संज्ञो न वै पञ्चवायुः**
न वा सप्तधातुर्न वा पञ्चकोशः।
न वाक्पाणि पादौ न चोपस्थपायू
चिदानन्दरूपः शिवोऽहम शिवोऽहम ।।

मैं प्राण नाम वाला नहीं हूँ। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान ये पाँच वायु मैं नहीं हूँ। स्थूल शरीर का कारण बनने वाले रक्त, मांस आदि सात धातुएँ भी मैं नहीं हूँ। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनंदमय पाँच कोशें भी मैं नहीं हूँ। हाथ, पैर, वाणी, उपस्थ, पायू ये कर्मेंद्रियाँ भी मैं नहीं हूँ। मैं चिदानंद रूप शिव हूँ, मैं शिव हूँ।

श्लोः न मे द्वेष रागौ न मे लोभ मोहौ
मदो नैव मे नैव मात्सर्य भावः।
न धर्मो न चार्थो न कामो ना मोक्षः
चिदानन्दरूपः शिवोऽहम शिवोऽहम ।।

मैं राग-द्वेष, लोभ-मोह नहीं हूँ। मैं मद मत्सर भी नहीं हूँ। ये सब पंचभौतिक अंतःकरण से संबंधित हैं। मैं सर्वात्मा स्वरूप हूँ। मैं नित्य मुक्त हूँ। इसलिए, मुझे पुरुषार्थ के रूप में कहे गए धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष है ही नहीं। मैं चिदानंद रूप शिव हूँ। मैं शिव हूँ।

श्लोः न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं
न मन्त्रो न तीर्थं न वेदो न यज्ञाः
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता
चिदानन्दरूपः शिवोऽहम शिवोऽहम ।।

पुण्य भी मैं नहीं हूँ, पाप भी मैं नहीं हूँ। सुख भी मैं नहीं हूँ, दुःख भी मैं नहीं हूँ। मंत्र भी मैं नहीं हूँ, पुण्य तीर्थ भी मैं नहीं हूँ। वेद भी मैं नहीं हूँ, वेद विहित यज्ञ भी मैं नहीं हूँ।

खाने योग्य पदार्थ भी मैं नहीं हूँ, खाने की क्रिया भी मैं नहीं हूँ, खाने (अनुभव) वाला भी मैं नहीं हूँ।

चितानंद स्वरूप मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ।

श्लोः   न मृत्यु न शंका न मे जातिभेदः
पिता नैव मे नैव माता न जन्मः।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यः
चिदानन्दरूपः शिवोऽहम शिवोऽहम ।।

मुझे (आत्मा को) मृत्यु नहीं है। मुझे भय नहीं है। न स्त्री, न पुरुष, नपुंसक और न ही कोई जाति का भेद है। मुझे जन्म नहीं है, इसलिए न मेरी कोई माता है, न पिता। न मेरे कोई संबंधी हैं, न मित्र, न गुरु, न शिष्य। मैं चिदानंद स्वरूप शिव हूँ। मैं शिव हूँ।

श्लोः   अहं निर्विकल्पो निराकार रूपो
विभुत्वाच्च सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम।
न चासंगतं नैव मुक्ति र्न मेयः
चिदानन्दरूपः शिवोऽहम शिवोऽहम ।।

मैं किसी विशेषताओं से रहित हूँ, निराकार हूँ, सर्व व्यापी हूँ, मैं सर्व देशों में, सर्व कालों में, सर्व वस्तुओं में विद्यमान हूँ। इसलिए मेरी स्वरूप सभी इंद्रियों के साथ संबंधित रहती है। मैं मुक्त नहीं हूँ, मैं बंधन में नहीं हूँ, मैं किसी समूह का सदस्य नहीं हूँ, मैं केवल ज्ञानानंद से परिपूर्ण आत्मा हूँ। मैं चिदानंद स्वरूप शिव हूँ, मैं शिव हूँ।

आदि शंकराचार्य जी के संदेश के अनुसार, निर्वाण मार्ग के माध्यम से निर्वाण स्थिति अर्थात मुक्ति की अवस्था को प्राप्त व्यक्ति यह समझता है कि वह किसी विशेषता से रहित, निराकार, सर्वव्यापी है। वह यह जान लेता है कि मैं सभी कालों में, सभी स्थानों में, और सभी वस्तुओं में विद्यमान हूं। मैं केवल ज्ञान और आनंद स्वरूप 'आत्मा' हूं। मैं चिदानंद स्वरूप शिव हूं। अर्थात, 'मैं ही सब कुछ हूँ...सब कुछ मैं ही हूं,' यह अनुभूति उसे होती है। उसकी व्यवहारिकता भी इसी अनुभूति के अनुरूप बदल जाती है।

जिस किसी को भी देखता है, वही तो है! जिसे भी देखता है, वही तो है! ऐसा भावना करता है। उसे समझ में आता है कि वही सब रूपों में मौजूद है। तो फिर वह किसी को क्यों दुख पहुंचाएगा? किसी का अपमान क्यों करेगा? किसी का नुकसान क्यों करेगा? किसी को क्यों परेशान करेगा? जो भी करेगा, क्या वह खुद के साथ ही नहीं कर रहा होगा? इसलिए वह ऐसे काम कभी नहीं करता। इसी तरह, अगर वह किसी जानवर को मारेगा, सताएगा या खाएगा, तो क्या वह खुद को ही नहीं सताएगा? इसलिए वह किसी भी जानवर या पक्षी को न मारता है, न सताता है, न खाता है। बल्कि वह उनसे प्यार करता है, उनकी रक्षा करता है, और उनसे दोस्ती करता है। वह सभी को और हर चीज को अपने समान मानता है।

जिस प्रकार से ब्र्मर्षि वशिष्ठ ने जो बोध दिया, वह यह है कि 'कर्मो में द्वैत, भाव में अद्वैत का आश्रय लो।'

इसीलिए जिनका व्यवहार श्री शंकराचार्य द्वारा सिखाए मार्ग के अनुसार बदल जाता है, वे निर्वाण स्थिति में ही हैं, जैसे उन्होंने निर्वाण प्राप्त कर लिया हो। उन्हें जीवन्मुक्त भी कहा जाता है।

इसलिए मुमुक्षुओं अर्थात जो ध्यान साधना कर रहे हैं, उन्हें अपना व्यवहार ऊपर जैसे दिया गया वैसे बदलाव आया? या नहीं? यह देखना चाहिए। यदि बदलाव नहीं दिखता, तो यह जानना चाहिए कि साधना में कहीं कोई कमी है। उस कमी को सुधारकर साधना को ज़ारी रखना चाहिए। जीवन के लक्ष्य, निर्वाण को प्राप्त करना चाहिए। जीवन को धन्य बनाना चाहिए। यही पत्री जी ने सिखाया।

‘ध्यान करिए’

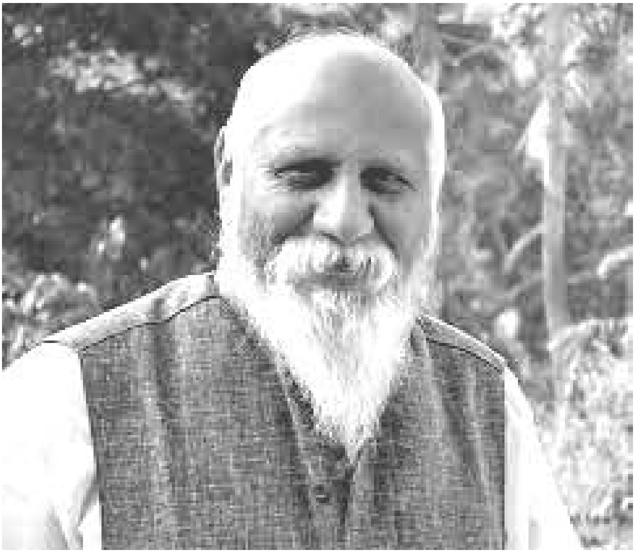

‘ध्यान अर्थात ?’

‘ध्यान’ अर्थात ‘प्रार्थना’ नहीं है! ‘ध्यान’ अर्थात ‘स्तुति’ नहीं है! ध्यान अर्थात ‘नामस्मरण’ नहीं है! ध्यान अर्थात ‘मंत्रजप’ नहीं है! ध्यान अर्थात ‘श्वास पर ध्यान केंद्रित करना’। श्वास पर ध्यान केंद्रित करना ही बुद्ध द्वारा उपदेशित ‘आनापानसति’ है!

‘सत्य’

हमने अपना जन्म खुद चुना है। हर किसी को खुद ही अपना उद्धार करना चाहिए! कोई और किसी का उद्धार कभी नहीं कर सकता! सृष्टि में करोड़ों-अरबों लोक हैं। इस लोक में हम केवल ‘यात्रि’ हैं।

‘मृत्यु’

‘मरना’ अर्थात शरीर को छोड़ना!

‘मरना’ अर्थात अपने आसपास की दुनिया को बदलना!

‘मरना’ अर्थात और एक नई दुनिया में प्रवेश करना!

'कर्म सिद्धांत'

अपने कर्मों को खुद भुगतना होगा। हमारा बुराई ही हमें बुरा देता है। हमारा भलाई ही हमें भला देगा।

'ज्ञान'

सबसे हमेशा सब कुछ सीखते रहना चाहिए। समय का एक क्षण कभी भी व्यर्थ नहीं करना चाहिए। शक्ति का एक अंश कभी भी बर्बाद नहीं करना चाहिए। इस वर्तमान जन्म को ही भू लोक का आखरी जन्म बनाना चाहिए।

- पत्रीजी

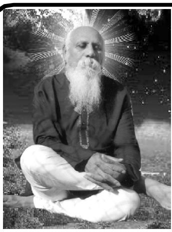

ध्यान की विधि सांस पर ध्यान

जिस किसी को जो कोई आरामदायक आसान हो उसमें आराम से बैठकर... दोनों हाथों को जोड़कर... दोनों आंखों को बंद करके... प्राकृतिक रूप से होने वाला सांस लेना और छोड़ने की प्रक्रिया का अवलोकन करना चाहिए!

बीच-बीच में अनेकानेक सोच मन में आते हैं उन्हें वहीं के वहीं कटौती करके... फिर से बार-बार सांस पर ही ध्यान ले जाते रहना चाहिए... धीरे-धीरे निर्विचार की स्थिति मिलती है.... चित्त वृत्तों का निरोध होगा... मन निर्विषय, शून्य हो जाएगा। मन को शांति मिलेगा। यही ध्यान की अवस्था है।

इस निर्विचार अवस्था में होने वाले अनेकानेक शारीरिक, नाड़ी मंडल, आत्मा अनुभवों का अवलोकन करना चाहिए। इस स्थिति में ब्रह्मांडीय प्राण शक्ति अत्यधिक मात्रा से शरीर में प्रवेश करके नाड़ी मंडल को शुद्ध करता है। उस ऊर्जा के कारण बीमारियां कम हो जाते हैं। नाड़ी मंडल शुद्ध होने के कारण कर्मों का नाश होते हैं।

हर दिन अपने उम्र के हिसाब से... जितना उम्र हो कम से कम उतने मिनट... जरूर... दिन में दो बार... ध्यान करना चाहिए।

To subscribe to Tatavarthy's YouTube channel:

When you click the YouTube link sent in the WhatsApp group, it will open the Tatavarthy Veera Raghava Rao channel. Once open, you will see the "Subscribe" button-click on it to subscribe. By clicking the bell icon next to it, you can receive notifications of new videos everyday.

Otherwise, visit www.tst.org.in/videos/ Click on "Tatavarthy Veera Raghava Rao" in Section I, or on the names in sections II & III. This will open the respective channels. Once open, click the "Subscribe" button, and by pressing the bell icon next to it, you can get daily video updates.

Information available on Tatavarthy's website:

Website address: www.tst.org.in

a) Details of programs conducted under the guidance of Mr. and Mrs. Tatavarthy and Google Maps location are available.

b) All books by Mr. and Mrs. Tatavarthy are available in PDF format for free download in Telugu, Kannada, Hindi, and English languages.

c) All the messages of Mr. and Mrs. Tatvarthy are organized in concept-wise YouTube playlists.

d) Summaries of Mr. and Mrs. Tatavarthy's messages are provided in the form of quotations.

e) The gallery of Mr. and Mrs. Tatavarthy is also available.

For registration of a 3 day free meditation and soul-knowledge training classes held in Bhimavaram on the 1st, 2nd, and 3rd of every month, contact Sindhura, 8555995217.

Programs by the Tatavarthy's that will be broadcasted on YouTube:

a) Channel name: **Tatavarthy Veera Raghava Rao**

This channel has 2,000+ videos featuring messages from Mr and Mrs Tatavarthy.

b) PMC has also launched a YouTube channel for Brahmarshi Tatavarthy Veera Raghava Rao.

Channel name: **Brahmarshi Tatavarthy Veera Raghava Rao.**

c) For messages from trainees who have trained under Mr. and Mrs. Tatavarthy, watch the Tatavarthy Spiritual Trainees YouTube channel.

d) You can also go directly to the YouTube app, type Tatavarthy Veera Raghava Rao in the search bar, and watch all the Mr. and Mrs.Tatavarthy videos.

To watch Tatavarthy's zoom sessions:

a) Silence meditation from **4 a.m.** to **6.30 a.m.**, followed by messages related to soul-knowledge from **6.30am** to **7.30am.**

Zoom ID: **2413823868** Password: **RAO**

b) The above-mentioned Zoom session will also be livestreamed on **YouTube** from **6.30am to 7.30am.**

c) Those who are in the TVR & TRL WhatsApp group will receive Zoom and YouTube links, along with details about the Tatavarthy's classes. They must save Sindhura's phone number: **8555995217**

d) Those who wish to join the Tatavarthy's WhatsApp group can contact Sindhura: 8555995217, Madhu: 7893917364 or visit www.tst.org.in and click on the "Join WhatsApp Group" link.

श्री तटवर्ती वीरा राघवराव का हिन्दी किताब

1) आत्म शास्त्र । Rs.200/-
2) ध्यान विद्या । Rs.160/-
3) भगवद् गीता का सार । Rs.160/-
4) एक और जन्म । Rs.160/-
5) सत्य मार्ग । Rs.160/-
6) 'गाइडिंग' ध्यान क्यों नही ? Rs.120/-
7) भगवान कौन हैं। Rs.120/-
8) कर्म सिद्धांत । Rs.120/-
9) विज्ञान का अर्थ - निहितार्थ Rs.120/-
10) मरने से पहले मरना है। Rs.130/-
11) ब्रह्म ज्ञान। Rs.100/-
12) यह जीवन क्यों हैं ? Rs.100/-
13) मेहर बाबा का संदेश। Rs.100/-
14) मरने के बाद, साथ में आने वाले विषयों ।.. Rs.80/-
15) भागवत के दृश्यों का अर्थ Rs.80/-
16) ज्ञान माला Rs.70/-
17) श्री दत्तात्रेय जी का 24 गुरुओं। Rs.70/-
18) दुख निवारण का मार्ग Rs.75/-
19) आर्थिक स्थिति बढ़ाना है तो ? Rs.60/-
20) निर्वाण मार्ग Rs.60/-
21) सत्य Rs.50/-
22) क्या हम इस लोक के वासी हैं या परलोक के वासी हैं? Rs.50/-
23) गुरु को पहचानना कैसे ? Rs.50/-

For Books Please Contact :

TATAVARTHI VEERA RAGHAVARAO

BHIMAVARAM. Ph: 94403 09812

'निर्वाण'

दुःखों से मुक्ति ही 'निर्वाण' या 'मुक्ति' कहा जाता है। तरह-तरह के दुःखों से मुक्त होना, अर्थात बाहर आना ही 'निर्वाण' है।

शारीरक कष्टों से मुक्ति पाना ही 'निर्वाण' है। मानसिक परेशानियों, तनावों, चिंताओं और भय से मुक्त होना ही 'निर्वाण' कहलाता है।

वैसे ही 'बुद्धि' की 'मंदता' से मुक्त होना ही 'निर्वाण' है।

ये सब एक बार खत्म होकर फिर से अगर हो तो, तब उसे 'निर्वाण' आया, ऐसा नहीं कहते हैं।

जब ये सभी दोष हमेशा के लिए समाप्त हो जाते हैं... तभी हम ने 'निर्वाण' को प्राप्त किया है।

ध्यान साधना, स्वाध्याय साधना, सज्जन संगति साधना ये तीनों प्रकार की साधनाएँ ही मुक्ति यानी निर्वाण पाने के मार्ग हैं।

- **ब्रह्मर्षि पत्रीजी**

Rs.60/-